Chapter पाँच

दक्ष के यज्ञ का विध्वंस

मैत्रेय उवाच
भवो भवान्या निधनं प्रजापतेर्
असत्कृताया अवगम्य नारदात् ।
स्वपार्षदसैन्यं च तदध्वरर्भुभि-
र्विद्रावितं क्रोधमपारमादधे ॥ १ ॥

शब्दार्थ

मैत्रेयः उवाच—मैत्रेय ने कहा; भवः—शिव; भवान्याः—सती का; निधनम्—मृत्यु; प्रजापतेः—प्रजापति दक्ष के कारण; असत्-कृतायाः—अपमानित होकर; अवगम्य—सुनकर; नारदात्—नारद से; स्व-पार्षद-सैन्यम्—अपने पार्षदों के सैनिक; च—तथा; तत्-अध्वर—उस (दक्ष) के यज्ञ (से उत्पन्न); ऋभुभिः—ऋभुओं द्वारा; विद्रावितम्—खदेड़ दिए गये; क्रोधम्—क्रोध; अपारम्—असीम; आदधे—प्रदर्शित किया।.

मैत्रेय ने कहा; जब शिव ने नारद से सुना कि उनकी पत्नी सती प्रजापति दक्ष द्वारा किये गये अपमान के कारण मर चुकी हैं और ऋभुओं द्वारा उनके सैनिक खदेड़ दिये गये हैं, तो वे अत्यधिक क्रोधित हुए।

तात्पर्य : शिवजी ने समझ लिया था कि दक्ष की सबसे छोटी पुत्री होने के कारण, सती ही शिव के कार्य की शुद्धता का प्रमाण प्रस्तुत कर सकती हैं और दक्ष तथा उनके बीच की भ्रान्ति (मनोमालिन्य) को दूर कर सकती हैं। किन्तु इस तरह का समझौता नहीं हो पाया। उल्टे जब बिना बुलाये ही सती अपने पिता के घर पहुँचीं तो उनके प्रति सम्मान प्रदर्शित न करके उनके पिता ने उनका जानबूझकर अपमान किया। सती स्वयं ही अपने पिता दक्ष का वध कर सकती थीं, क्योंकि वे साक्षात् भौतिक शक्ति हैं और उनमें इस ब्रह्माण्ड के अंदर मारने तथा उत्पन्न करने की अपार शक्ति है। *ब्रह्म-संहिता* में उनकी शक्ति का वर्णन इस प्रकार हुआ है—वे अनेक ब्रह्माण्डों का सृजन एवं संहार करने में सक्षम हैं। किन्तु इतनी शक्तिमान होते हुए भी वे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण के आदेश के अनुसार ही उनकी छाया की भाँति कार्य करती हैं। सती के लिए अपने पिता को दंडित करना कठिन न था, लेकिन उन्होंने सोचा कि पुत्री होने के नाते अपने पिता का वध करना उचित नहीं है। इस तरह उन्होंने अपने शरीर को ही त्याग देने का निश्चय किया, जो उस के शरीर से उन्हें प्राप्त हुआ था और दक्ष ने उन्हें रोका तक नहीं ।

जब सती ने अपना शरीर त्याग दिया तो नारद ने इसकी जानकारी शिवजी को दी। नारद सदा ऐसी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ ले जाते हैं। जब शिव ने सुना कि उनकी साध्वी पत्नी मर चुकी है, तो वे स्वाभाविक रूप से अत्यन्त क्रुद्ध हुए। उन्हें यह भी पता चला कि भृगु मुनि ने *यजुर्वेद* मंत्रों के पाठ द्वारा ऋभुओं को उत्पन्न किया है और इन देवताओं ने उनके उन समस्त पार्षदों को खदेड़ दिया है, जो यज्ञ-स्थल में उपस्थित थे। अत: उन्होंने इस अपमान का बदला लेना चाहा और निश्चय किया कि दक्ष का वध कर दिया जाय, क्योंकि वही सती की मृत्यु का कारण था।

क्रुद्धः सुदष्टौष्ठपुटः स धूर्जटि-
र्जटां तडिद्वह्निसटोग्ररोचिषम् ।
उत्कृत्य रुद्रः सहसोत्थितो हसन्
गम्भीरनादो विससर्ज तां भुवि ॥ २ ॥

शब्दार्थ

क्रुद्धः—क्रुद्ध; सु-दष्ट-ओष्ठ-पुटः—अपने होठों को दाँतों से काटते हुए; सः—वह (शिव); धूः-जटिः—शरीर पर जटा धारण किये; जटाम्—एक लट; तडित्—बिजली की; वह्नि—अग्नि की; सटा—ज्वाला, लपट; उग्र—भीषण; रोचिषम्—प्रज्ज्वलित; उत्कृत्य—नोच कर; रुद्रः—शिव; सहसा—तुरन्त; उत्थितः—खड़े हो गये; हसन्—हँसते हुए; गम्भीर—गहरा; नादः—ध्वनि; विससर्ज—पटक दिया; ताम्—उस (बाल) को; भुवि—पृथ्वी पर।

इस प्रकार अत्यधिक क्रुद्ध होने के कारण शिव ने अपने दाँतों से होठ चबाते हुए तुरन्त अपने सिर की जटाओं से एक लट नोच ली, जो बिजली अथवा अग्नि की भाँति जलने लगी। वे पागल की भाँति हँसते हुए तुरन्त खड़े हो गये और उस लट को पृथ्वी पर पटक दिया।

ततोऽतिकायस्तनुवा स्पृशन्दिवं
सहस्रबाहुर्घनरुक्त्रिसूर्यदृक् ।
करालदंष्ट्रो ज्वलदग्निमूर्धजः
कपालमाली विविधोद्यतायुधः ॥ ३ ॥

शब्दार्थ

ततः—उस समय; अतिकायः—विशाल शरीर वाला (वीरभद्र); तनुवा—अपने शरीर के साथ; स्पृशन्—स्पर्श करता; दिवम्—आकाश; सहस्र—एक हजार; बाहुः—हाथ; घन-रुक्—श्याम रंग का; त्रि-सूर्य-दृक्—तीन सूर्यों के समानतेज वाला; कराल-दंष्ट्रः—अत्यन्त भयानक दाढ़ों वाला; ज्वलत्-अग्नि—जलती हुई आग (के समान); मूर्धजः—शिर पर बाल धारण किये; कपाल-माली—नरमुंडों की माला पहने; विविध—अनेक प्रकार से; उद्यत—उठाये हुए; आयुधः—हथियारों से लैस।

उससे आकाश के समान ऊँचा तथा तीन सूर्यों के सम्मिलित तेज के समान एक भयानक श्याम वर्ण का असुर उत्पन्न हुआ, जिसके दाँत अत्यन्त भयानक थे और उसके सिर के केश

प्रज्ज्वलित अग्नि के समान लग रहे थे। उसके हजारों भुजाएँ थीं, जो अस्त्र-शस्त्रों से लैस थीं और उसने नरमुंडों की माला पहन रखी थी।

तं किं करोमीति गृणन्तमाह
बद्धाञ्जलिं भगवान्भूतनाथः ।
दक्षं सयज्ञं जहि मद्भटानां
त्वमग्रणी रुद्र भटांशको मे ॥ ४॥

शब्दार्थ

तम्—उसको (वीरभद्र को); किम्—क्या; करोमि—करूँ; इति—इस प्रकार; गृणन्तम्—पूछने पर; आह—आदेश दिया; बद्ध-अञ्जलिम्—हाथ जोड़ कर; भगवान्—समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी (शिव); भूत-नाथः—भूतों के नाथ; दक्षम्—दक्ष को; स-यज्ञम्—उसके यज्ञ सहित; जहि—मारो; मत्-भटानाम्—मेरे सभी पार्षदों के; त्वम्—तुम; अग्रणीः—प्रमुख; रुद्र—हे रुद्र; भट—हे युद्ध में कुशल; अंशकः—शरीर से उत्पन्न; मे—मेरे।

उस महाकाय असुर ने जब हाथ जोड़ कर पूछा, ''हे नाथ। मैं क्या करूँ?'' भूतनाथ रूप शिव ने प्रत्यक्षतः आदेश दिया, ''तुम मेरे शरीर से उत्पन्न होने के कारण मेरे समस्त पार्षदों के प्रमुख हुए, अतः यज्ञ (स्थल) पर जाकर दक्ष को उसके सैनिकों सहित मार डालो।''

तात्पर्य : यहाँ से *ब्रह्मतेज* तथा *शिवतेज* में स्पर्धा प्रारम्भ होती है। भृगुमुनि ने *ब्रह्मतेज* से ऋभु देवों को उत्पन्न किया था, जिन्होंने यज्ञस्थल से शिव के सैनिकों को खदेड़ दिया था। जब शिव ने सुना कि उनके सैनिक भगा दिये गये हैं, तो उन्होंने बदला लेने के लिए वीरभद्र नाम का एक दीर्घकाय काला असुर उत्पन्न किया। कभी-कभी सतोगुण तथा तमोगुण में स्पर्धा चलती है। यही इस संसार की रीति है। भले ही कोई सतोगुणी क्यों न हो, सम्भावना यही है कि उसमें रजोगुण या तमोगुण का भी अंश मिला रहता है। यही भौतिक प्रकृति का नियम है। यद्यपि आध्यात्मिक जगत में *शुद्ध सत्त्व* ही मूलभूत तत्त्व (सिद्धान्त) है, किन्तु इस जगत में सत्त्व का शुद्ध प्राकट्य कठिन है। इस प्रकार विभिन्न भौतिक गुणों में जीवन-संघर्ष चलता रहता है। प्रजापति दक्ष को लेकर शिव तथा भृगु मुनि के बीच का यह संघर्ष प्रकृति के विभिन्न गुणों के मध्य स्पर्धा का ज्वलन्त उदाहरण है।

आज्ञप्त एवं कुपितेन मन्युना
स देवदेवं परिचक्रमे विभुम् ।
मेनेतदात्मानमसङ्गरंहसा

महीयसां तात सहः सहिष्णुम् ॥ ५ ॥

शब्दार्थ

आज्ञप्तः—आज्ञा दी; एवम्—इस प्रकार; कुपितेन—क्रुद्ध; मन्युना—शिव द्वारा (जो साक्षात् क्रोध हैं); सः—उसने (वीरभद्र); देव-देवम्—जो देवताओं द्वारा पूजित है; परिचक्रमे—परिक्रमा की; विभुम्—शिव की; मेने—विचार किया; तदा—उस समय; आत्मानम्—स्वतः; असङ्ग-रंहसा—शिव की शक्ति से, जिसका विरोध नहीं किया जा सकता; महीयसाम्—अत्यन्त शक्तिशाली का; तात—हे विदुर; सहः—शक्ति; सहिष्णुम्—सहने में समर्थ।

मैत्रेय ने आगे बताया : हे विदुर, वह श्याम पुरुष भगवान् का साक्षात् क्रोध था और शिवजी के आदेशों का पालन करने के लिए उद्यत था। इस प्रकार किसी भी विरोधी शक्ति का सामना करने में अपने को समर्थ समझ कर उसने भगवान् शिव की प्रदक्षिणा की।

अन्वीयमानः स तु रुद्रपार्षदै-
भृशं नदद्भिर्व्यनदत्सुभैरवम् ।
उद्यम्य शूलं जगदन्तकान्तकं
सम्प्राद्रवद्घोषणभूषणाङ्घ्रिः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

अन्वीयमानः—पीछे चलते हुए; सः—वह (वीरभद्र); तु—लेकिन; रुद्र-पार्षदैः—शिव के सैनिकों द्वारा; भृशम्—शोर करते हुए; नदद्भिः—गर्जते हुए; व्यनदत्—ध्वनि की; सु-भैरवम्—अत्यन्त भयानक; उद्यम्य—लेकर; शूलम्—त्रिशूल; जगत्-अन्तक—मृत्यु; अन्तकम्—मारते हुए; सम्प्राद्रवत्—(दक्ष के यज्ञ) की ओर लपके; घोषण—गर्जते हुए; भूषण-अङ्घ्रिः—अपने पैरों में कड़े पहने।

घोर गर्जना करते हुए शिव के अन्य अनेक सैनिक भी उस भयानक असुर के साथ हो लिए। वह एक विशाल त्रिशूल लिए हुए था, जो इतना भयानक था कि मृत्यु का भी वध करने में समर्थ था और उसके पाँवों में कड़े थे, जो गर्जना करते प्रतीत हो रहे थे।

अथर्त्विजो यजमानः सदस्याः
ककुभ्युदीच्यां प्रसमीक्ष्य रेणुम् ।
तमः किमेतत्कुत एतद्रजोऽभू-
दिति द्विजा द्विजपत्न्यश्च दध्युः ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

अथ—उस समय; ऋत्विजः—पुरोहित; यजमानः—यज्ञ सम्पन्न करने वाला प्रमुख व्यक्ति (दक्ष); सदस्याः—यज्ञस्थल में एकत्र सभी पुरुष; ककुभि उदीच्याम्—उत्तरी दिशा में; प्रसमीक्ष्य—देखकर; रेणुम्—धूल; तमः—अधंकार; किम्—क्या; एतत्—यह; कुतः—वहाँ से; एतत्—यह; रजः—धूल; अभूत्—आई है; इति—इस प्रकार; द्विजाः—ब्राह्मण; द्विज-पत्न्यः—ब्राह्मणों की पत्नियाँ; च—तथा; दध्युः—विचार करने लगीं।

उस समय यज्ञस्थल में एकत्रित सभी लोग—पुरोहित, प्रमुख यजमान, ब्राह्मण तथा उनकी पत्नियाँ—आश्चर्य करने लगे कि यह अंधकार कहाँ से आ रहा है। बाद में उनकी समझ में आया

कि यह धूलभरी आँधी थी और वे सभी अत्यन्त व्याकुल हो गये थे।

वाता न वान्ति न हि सन्ति दस्यवः
प्राचीनबर्हिर्जीवति होग्रदण्डः ।
गावो न काल्यन्त इदं कुतो रजो
लोकोऽधुना किं प्रलयाय कल्पते ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

वाताः—हवाएँ; न वान्ति—नहीं बह रही हैं; न—न तो; हि—क्योंकि; सन्ति—सम्भव है; दस्यवः—लुटेरे; प्राचीन-बर्हिः—प्राचीन राजा बर्हि; जीवति—जीवित है; ह—अब भी; उग्र-दण्डः—जो कठोर दण्ड देगा; गावः—गाएँ; न काल्यन्ते—हाँकी नहीं जातीं; इदम्—यह; कुतः—कहाँ से; रजः—धूलि; लोकः—लोक; अधुना—अब; किम्—क्या; प्रलयाय—प्रलय के लिए; कल्पते—आया समझा जाय।.

आँधी के स्त्रोत के सम्बन्ध में अनुमान लगाते हुए उन्होंने कहा : न तो तेज हवाएँ चल रही हैं और न गौएं ही जा रही हैं, न यह सम्भव है कि यह धूल भरी आँधी लुटेरों द्वारा उठी है, क्योंकि अभी भी बलशाली राजा बर्हि उन्हें दण्ड देने के लिए जीवित है। तो फिर यह धूलभरी आँधी कहाँ से आ रही है? क्या इस लोक का प्रलय होने वाला है?

तात्पर्य : इस श्लोक में विशेष रूप से *प्राचीन बर्हिः जीवति* महत्त्वपूर्ण है। उस भूभाग का राजा बर्हि नाम से जाना जाता था, यथापि वह वृद्ध था किन्तु अत्यन्त शक्तिशाली शासक था। इस प्रकार चोरों तथा लुटेरों के आक्रमण की कोई सम्भावना न थी। अप्रत्यक्ष रूप से यहाँ यह कहा गया है कि जब शासक शक्तिशाली नहीं होता तभी राज्य में चोर, लुटेरे अवांछित लोग, उचक्के रहते हैं। जब न्याय के नाम पर चोरों को छुट दे दी जाती है, तो ऐसे लुटेरों तथा अवांछित लोगों से राज्य में अशान्ति फैलती है। शिवजी के सैनिकों तथा अनुचरों से उठी हुई धूलि प्रलयकालीन दृश्य उपस्थित कर रही थी। जब इस सृष्टि का संहार होना होता है, तो यह कार्य शिव ही सम्पन्न करते हैं। अतः उनके द्वारा उत्पन्न स्थिति दृश्य जगत के प्रलय काल की सी थी।

प्रसूतिमिश्राः स्त्रिय उद्विग्नचित्ता
ऊचुर्विपाको वृजिनस्यैव तस्य ।
यत्पश्यन्तीनां दुहितृणां प्रजेशः
सुतां सतीमवदध्यावनागाम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

प्रसूति-मिश्राः—प्रसूति इत्यादि; स्त्रियः—स्त्रियाँ; उद्विग्न-चित्ताः—अत्यन्त उद्विग्न; ऊचुः—बोली; विपाकः—दुर्दैव; वृजिनस्य—पापकर्म का; एव—निस्सन्देह; तस्य—उसका (दक्ष का); यत्—क्योंकि; पश्यन्तीनाम्—देखने वाली; दुहितृणाम्—अपनी बहनों का; प्रजेशः—प्रजा के स्वामी (दक्ष); सुताम्—पुत्री; सतीम्—सती; अवदध्यौ—अपमानित; अनागाम्—पूर्णतया निर्दोष।

दक्ष की पत्नी प्रसूति एवं वहाँ पर एकत्र अन्य स्त्रियों ने अत्यन्त आकुल होकर कहा : यह संकट दक्ष के कारण सती की मृत्यु से उत्पन्न है, क्योंकि निर्दोष सती ने अपनी बहनों के देखते-देखते अपना शरीर त्याग दिया है।

तात्पर्य : उदारमना प्रसूति तुरन्त समझ गई कि कठोरहृदय प्रजापति दक्ष के अशुभ कार्य से ही यह संकट आ खड़ा हुआ है। वह इतना क्रूर था कि अपनी सबसे छोटी पुत्री को उसकी बहनों के समक्ष आत्महत्या करते हुए भी रोक नहीं सका। सती की माँ ही समझ सकती थी कि अपने पिता द्वारा अपमानित होने से सती को कितना कष्ट हुआ होगा। सती अन्य सभी बेटियों के साथ ही उपस्थित थी और दक्ष ने जानबूझकर उसे छोड़कर अन्य सभी का भली भाँति सत्कार किया था, क्योंकि वह शिव की पत्नी जो ठहरी। इस विचार से दक्ष की पत्नी को आसन्न संकट का विश्वास हो चुका था और उसे ज्ञात था कि दक्ष को अपने इस जघन्य कार्य के लिए मरने के लिए तैयार रहना चाहिए।

यस्त्वन्तकाले व्युप्तजटाकलापः
स्वशूलसूच्यर्पितदिग्गजेन्द्रः ।
वितत्य नृत्यत्युदितास्त्रदोर्ध्वजा-
नुच्चाट्टहासस्तनयित्नुभिन्नदिक् ॥ १० ॥

शब्दार्थ

यः—जो (शिव); तु—लेकिन; अन्त-काले—प्रलय से समय; व्युप्त—छिटका कर; जटा-कलापः—अपने बालों का गुच्छा; स्व-शूल—अपना त्रिशूल; सूचि—नोकों पर; अर्पित—बिंधा हुआ; दिक्-गजेन्द्रः—विभिन्न दिशाओं के शासक; वितत्य—बिखेर कर; नृत्यति—नाचता है; उदित—ऊपर उठाये; अस्त्र—हथियार; दोः—हाथ; ध्वजान्—झंडे; उच्च—ऊँचे स्वर से; अट्ट-हास—जोर की हँसी; स्तनयित्नु—घोर गर्जना से; भिन्न—विभाजित; दिक्—दिशाएँ।

प्रलय के समय, शिव के बाल बिखर जाते हैं और वे अपने त्रिशूल से विभिन्न दिशाओं के शासकों (दिक्पतियों) को बेध लेते हैं। वे गर्वपूर्वक अट्टहास करते हुए ताण्डव नृत्य करते हैं और दिक्पतियों की भुजाओं को पताकाओं के समान बिखेर देते हैं, जिस प्रकार मेघों की गर्जना से समस्त लोकों में बादल छितरा जाते हैं।

तात्पर्य : प्रसूति को अपने दामाद शिव की शक्ति का आभास था, अतः प्रलयकाल में वे जो कुछ

करते हैं उसका वह वर्णन कर रही हैं। इससे संकेत मिलता है कि शिव की शक्ति इतनी अपार है कि उनके समक्ष दक्ष की कोई तुलना नहीं है। प्रलय के समय भगवान् शिव अपने हाथ में त्रिशूल लेकर दिक्पालों के ऊपर नृत्य करते हैं और उनकी जटाएँ उसी प्रकार बिखर जाती हैं जिस प्रकार बादल चारों ओर बिखर कर अखण्ड वृष्टि करते हैं। प्रलय की अन्तिम अवस्था में सभी लोक जल-मग्न हो जाते हैं और वह जलाप्लावन शिव के नृत्य के कारण होता है। यह नृत्य प्रलय-नृत्य कहलाता है। प्रसूति की समझ में आ रहा था कि आने वाला संकट दक्ष द्वारा अपनी पुत्री के निरादर से ही नहीं, वरन् शिव की प्रतिष्ठा एवं सम्मान की उपेक्षा करने से उत्पन्न हुआ है।

अमर्षयित्वा तमसह्यतेजसं
मन्युप्लुतं दुर्निरीक्ष्यं भ्रुकुट्या ।
करालदंष्ट्राभिरुदस्तभागणं
स्यात्स्वस्ति किं कोपयतो विधातुः ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

अमर्षयित्वा—नाराज करके; तम्—उसको (शिव को); असह्य-तेजसम्—असहनीय तेज वाले; मन्यु-प्लुतम्—क्रोध से पूरित; दुर्निरीक्ष्यम्—देखने में असमर्थ; भ्रु-कुट्या—भौंहों के हिलने से; कराल-दंष्ट्राभिः—डरावने दाँतों से; उदस्त-भागणम्—ज्योतिपुंजों (तारों) को अस्त-व्यस्त करके; स्यात्—हो; स्वस्ति—कल्याण; किम्—कैसे; कोपयतः—(शिव को) क्रुद्ध करने पर; विधातुः—ब्रह्मा का।

उस विराट श्याम पुरुष ने अपने डरावने दाँत निकाल लिए। अपनी भौंहों के चालन से उसने आकाश भर में तारों को तितर-बितर कर दिया और उन्हें अपने प्रबल भेदक तेज से आच्छादित कर लिया। दक्ष के कुव्यवहार के कारण दक्ष के पिता ब्रह्मा तक इस घोर कोप-प्रदर्शन से नहीं बच सकते थे।

बह्वेवमुद्विग्नदृशोच्यमाने
जनेन दक्षस्य मुहुर्महात्मनः ।
उत्पेतुरुत्पाततमाः सहस्रशो
भयावहा दिवि भूमौ च पर्यक् ॥ १२ ॥

शब्दार्थ

बहु—अनेक; एवम्—इस प्रकार; उद्विग्न-दृशा—कातर दृष्टि से; उच्यमाने—जब ऐसा कहा जा रहा था; जनेन—(यज्ञ में एकत्र) व्यक्तियों द्वारा; दक्षस्य—दक्ष के; मुहुः—पुनः-पुनः; महा-आत्मनः—पुष्ट हृदय वाले, निडर; उत्पेतुः—प्रकट हुआ; उत्पात-तमाः—अत्यन्त प्रबल लक्षण; सहस्रशः—हजारों; भय-आवहाः—भय उत्पन्न करने वाले; दिवि—आकाश में; भूमौ—भूमि पर; च—तथा; पर्यक्—सभी दिशाओं से।

जब सभी लोग परस्पर बातें कर रहे थे तो दक्ष को समस्त दिशाओं से, पृथ्वी से तथा आकाश से, अशुभ संकेत (अपशकुन) दिखाई पड़ने लगे।

तात्पर्य : इस श्लोक में दक्ष को *महात्मा* कहा गया है। *महात्मा* शब्द की टीका विभिन्न टीकाकारों ने अपने-अपने ढंग से की है। वीरराघव आचार्य ने संकेत किया है कि इस *महात्मा* शब्द का अर्थ ''स्थिर-हृदय'' है। कहने का तात्पर्य यह है कि दक्ष इतना पुष्ट-हृदय था कि पुत्री अपने प्राण देने को तत्पर थी फिर भी वह हिला नहीं, स्थिर बना रहा। इतने पर भी जब उसने विराट श्याम असुर द्वारा उत्पन्न विविध प्रकार के उत्पातों को देखा तो वह विचलित हो गया। इस सम्बन्ध में विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टिप्पणी है कि महात्मा कहलाए जाने के बावजूद जब तक किसी में महात्मा के लक्षण प्रकट न हों, तब तक उसे दुरात्मा समझना चाहिए। *भगवद्गीता* (९.१३) में महात्मा शब्द भगवान् के शुद्ध भक्त के लिए आया है— *महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिता:।* महात्मा सदैव भगवान् की अन्तरंगा शक्ति के मार्गदर्शन में रहता है, अत: दक्ष जैसा दुराचारी पुरुष महात्मा कैसे हो सकता था? महात्मा में देवताओं के सभी सद्गुण होने चाहिए, अत: इन गुणों से विहीन दक्ष किस तरह महात्मा कहला सकता था, उसे तो *दुरात्मा* कहा जाना चाहिए। यहाँ पर यह शब्द व्यंग्यपूर्वक प्रयुक्त है।

तावत्स रुद्रानुचरैर्महामखो
नानायुधैर्वामनकैरुदायुधै: ।
पिङ्गै: पिशङ्गैर्मकरोदराननै:
पर्याद्रवद्भिर्विदुरान्वरुध्यत ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तावत्—शीघ्र ही; स:—वह; रुद्र-अनुचरै:—शिव के अनुयायियों द्वारा; महा-मख:—महान् यज्ञस्थल; नाना—विविध प्रकार के; आयुधै:—हथियारों सहित; वामनकै:—नाटे कदके; उदायुधै:—ऊपर उठे हुए; पिङ्गै:—श्यामाभ भूरे; पिशङ्गै:—पीले; मकर-उदर-आननै:—मगर के समान पेट तथा मुख वालों से; पर्याद्रवद्भि:—चारों ओर दौड़ते हुए; विदुर—हे विदुर; अन्वरुध्यत—घिरा हुआ था।

हे विदुर, शिव के समस्त अनुचरों ने यज्ञस्थल को घेर लिया। वे नाटे कद के थे और अनेक प्रकार के हथियार लिये हुए थे उनके शरीर मकर के समान कुछ-कुछ काले तथा पीले थे। वे यज्ञस्थल के चारों ओर दौड़दौड़कर उत्पात मचाने लगे।

केचिद्बभञ्जुः प्राग्वंशं पत्नीशालां तथापरे ।
सद आग्नीध्रशालां च तद्विहारं महानसम् ॥ १४॥

शब्दार्थ

केचित्—किन्हीं ने; बभञ्जुः—गिरा दिया; प्राक्-वंशम्—यज्ञ-मंडप के ख भों को; पत्नी-शालाम्—स्त्रियों के कक्ष; तथा—भी; अपरे—अन्य; सदः—यज्ञशाला; आग्नीध्र-शालाम्—पुरोहितों का आवास; च—तथा; तत्-विहारम्—यजमान का घर; महा-अनसम्—पाकशाला।

कुछ सैनिकों ने यज्ञ-पंडाल के आधार-स्तम्भों को नीचे गिरा दिया, कुछ स्त्रियों के कक्ष में घुस गये, कुछ ने यज्ञस्थान को विनष्ट करना प्रारम्भ कर दिया और कुछ रसोई घर तथा आवासीय कक्षों में घुस गये।

रुरुजुर्यज्ञपात्राणि तथैकेऽग्नीननाशयन् ।
कुण्डेष्वमूत्रयन्केचिद्बिभिदुर्वेदिमेखलाः ॥ १५॥

शब्दार्थ

रुरुजुः—तोड़ डाला; यज्ञ-पात्राणि—यज्ञ में प्रयुक्त होने वाले पात्रों को; तथा—इस प्रकार; एके—कुछ ने; अग्नीन्—यज्ञ की अग्नियाँ; अनाशयन्—बुझा दीं; कुण्डेषु—यज्ञ स्थल में; अमूत्रयन्—पेशाब कर दिया; केचित्—किन्हीं ने; बिभिदुः—फाड़ डाला; वेदि-मेखलाः—यज्ञस्थल की सीमा रेखाएँ।

उन्होंने यज्ञ के सभी पात्र तोड़ दिये और उनमें से कुछ यज्ञ-अग्नि को बुझाने लगे। कुछेक ने तो यज्ञस्थल की सीमांकन मेखलाएँ तोड़ दी और कुछ ने यज्ञस्थल में पेशाब कर दिया।

अबाधन्त मुनीनन्ये एके पत्नीरतर्जयन् ।
अपरे जगृहुर्देवान्प्रत्यासन्नान्पलायितान् ॥ १६॥

शब्दार्थ

अबाधन्त—रास्ता रोक लिया; मुनीन्—मुनियों को; अन्ये—दूसरे; एके—कुछ ने; पत्नीः—स्त्रियों को; अतर्जयन्—डराया-धमकाया; अपरे—अन्य; जगृहुः—बन्दी कर लिया; देवान्—देवताओं को; प्रत्यासन्नान्—निकट ही; पलायितान्—भगने वालों को।

इनमें से कुछ ने भागते मुनियों का रास्ता रोक लिया, किन्हीं ने वहाँ पर एकत्र स्त्रियों को डराया-धमकाया और कुछ ने पण्डाल से भागते हुए देवताओं को बन्दी बना लिया।

भृगुं बबन्ध मणिमान्वीरभद्रः प्रजापतिम् ।
चण्डेशः पूषणं देवं भगं नन्दीश्वरोऽग्रहीत् ॥ १७॥

शब्दार्थ

भृगुम्—भृगु मुनि को; बबन्ध—बन्दी कर लिया; मणिमान्—मणिमान ने; वीरभद्रः—वीरभद्र ने; प्रजापतिम्—प्रजापति दक्ष को; चण्डेशः—चण्डेश ने; पूषणम्—पूषा को; देवम्—देवता; भगम्—भग; नन्दीश्वरः—नन्दीश्वर ने; अग्रहीत्—बन्दी कर लिया।

शिव के एक अनुचर मणिमान ने भृगु मुनि को बन्दी बना लिया तथा श्याम असुर वीरभद्र ने प्रजापति दक्ष को पकड़ लिया। एक अन्य अनुचर चण्डेश ने पूषा को तथा नन्दीश्वर ने भग देवता को बन्दी बना लिया।

सर्व एवर्त्विजो दृष्ट्वा सदस्याः सदिवौकसः ।
तैरर्द्यमानाः सुभृशं ग्रावभिर्नैकधाद्रवन् ॥ १८ ॥

शब्दार्थ

सर्वे—सभी; एव—निश्चय ही; ऋत्विजः—पुरोहित; दृष्ट्वा—देखकर; सदस्याः—यज्ञ में एकत्र सभी सदस्य; स-दिवौकसः—देवताओं सहित; तैः—उन (पत्थरों); अर्द्यमानाः—विचलित होकर; सु-भृशम्—अत्यधिक; ग्रावभिः—पत्थरों से; न एकधा—विभिन्न दिशाओं में; अद्रवन्—तितर-बितर हो गये।

लगातार पत्थरों की वर्षा के कारण समस्त पुरोहित तथा यज्ञ में एकत्र अन्य सदस्य महान् संकट में पड़ गये। अपने प्राणों के भय से वे चारों ओर तितर-बितर हो गये।

जुह्वतः स्रुवहस्तस्य श्मश्रूणि भगवान्भवः ।
भृगोर्लुलुञ्चे सदसि योऽहसच्छ्मश्रु दर्शयन् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

जुह्वतः—हवन करते हुए; स्रुव-हस्तस्य—हाथ में स्रुवा लिए; श्मश्रूणि—मूँछ; भगवान्—समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी; भवः—वीरभद्र; भृगोः—भृगुमुनि की; लुलुञ्चे—नोंच लीं; सदसि—भरी सभा में; यः—जो (भृगुमुनि); अहसत्—हँसा था; श्मश्रु—मूँछ; दर्शयन्—दिखाते हुए।

वीरभद्र ने अपने हाथों से अग्नि में आहुति डालते हुए भृगुमुनि की मूँछ नोच ली।

भगस्य नेत्रे भगवान्पातितस्य रुषा भुवि ।
उज्जहार सदस्थोऽक्ष्णा यः शपन्तमसूसुचत् ॥ २० ॥

शब्दार्थ

भगस्य—भग की; नेत्रे—दोनों आँखें; भगवान्—वीरभद्र; पातितस्य—गिरा करके; रुषा—रोषपूर्वक; भुवि—पृथ्वी पर; उज्जहार—निकाल लीं; सद-स्थः—विश्वसृक् की सभा में स्थित; अक्ष्णा—अपनी भृकुटियों के हिलने से; यः—जो (भग); शपन्तम्—(शिव को) शाप देता (दक्ष); असूसुचत्—उकसाया था।

वीरभद्र ने तुरन्त उस भग को पकड़ लिया, जो भृगु द्वारा शिव को शाप देते समय अपनी भौंहे मटका रहा था। उसने अत्यन्त क्रोध में आकर भग को पृथ्वी पर पटक दिया और बलपूर्वक

उसकी आँखें निकाल लीं।

पूष्णो ह्यपातयद्दन्तान्कालिङ्गस्य यथा बलः ।
शप्यमाने गरिमणि योऽहसद्दर्शयन्दतः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

पूष्णः—पूषा का; हि—चूँकि; अपातयत्—निकाल लिया; दन्तान्—दाँत; कालिङ्गस्य—कलिंग के राजा के; यथा—जिस प्रकार; बलः—बलदेव ने; शप्यमाने—शाप दिये जाने पर; गरिमणि—शिव; यः—जो (पूषा); अहसत्—हँसा था; दर्शयन्—दिखाते हुए; दतः—दाँत।

जिस प्रकार बलदेव ने अनिरुद्ध के विवाहोत्सव में द्यूतक्रीड़ा के समय कलिंगराज दंतवक्र के दाँत निकाल लिये थे, उसी प्रकार से वीरभद्र ने दक्ष तथा पूषा दोनों के दाँत उखाड़ लिये, क्योंकि दक्ष ने शिव को शाप दिये जाते समय दाँत दिखाये थे और पूषा ने भी सहमति स्वरूप हँसते हुए दाँत दिखाए थे।

तात्पर्य : यहाँ पर कृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध के विवाह का सन्दर्भ आया है। वह दंतवक्र की कन्या का अपहरण करने के पश्चात् पकड़ लिया गया था। जैसे ही उसे अपहरण का दण्ड दिया जाने वाला था, उसी समय द्वारका से बलराम सहित सैनिक आ गये और क्षत्रियों में युद्ध ठन गया। इस प्रकार का युद्ध विशेष रूप से विवाहोत्सवों के समय अत्यधिक प्रचलित था, क्योंकि तब सभी में एक दूसरे को ललकारने का जोश रहता था। ऐसी स्थिति में युद्ध अवश्यम्भावी होता था और उसमें लोग मारे जाते थे तथा आपदा आती रहती थी। इस प्रकार के युद्ध के बाद समझौता हो जाता था और सब कुछ ठीक हो जाता था। दक्ष का यह यज्ञ बहुत कुछ ऐसा ही था। अब वे सभी—दक्ष तथा भग और पूषा देवता एवं भृगुमुनि—शिव के सैनिकों द्वारा दण्डित हुए, किन्तु बाद में सब कुछ शान्त हो गया। अतः एक दूसरे से लड़ने की यह प्रवृत्ति वस्तुतः शत्रुतापूर्ण न थी। चूँकि प्रत्येक व्यक्ति इतना शक्तिशाली था और वैदिक मंत्र द्वारा अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना चाह रहा था, अतः दक्ष के यज्ञ में विभिन्न पक्षों द्वारा युद्ध कौशल का अच्छा प्रदर्शन हुआ।

आक्रम्योरसि दक्षस्य शितधारेण हेतिना ।
छिन्दन्नपि तदुद्धर्तुं नाशक्नोत्त्र्यम्बकस्तदा ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

आक्रम्य—बैठकर; उरसि—छाती पर; दक्षस्य—दक्ष की; शित-धारेण—तीक्ष्ण धार वाले; हेतिना—हथियार से; छिन्दन्—काटते हुए; अपि—भी; तत्—वह (सिर); उद्धर्तुम्—पृथक् करने में; न अशक्नोत्—समर्थ न हुआ; त्रि-अम्बकः—वीरभद्र (तीन नेत्रों वाला); तदा—तत्पश्चात्।

तब वह दैत्य सदृश पुरुष वीरभद्र दक्ष की छाती पर चढ़ बैठा और तीक्ष्ण हथियार से उसके शरीर से सिर काटकर अलग करने का प्रयत्न करने लगा, किन्तु सफल नहीं हुआ।

शस्त्रैरस्त्रान्वितैरेवमनिर्भिन्नत्वचं हरः ।
विस्मयं परमापन्नो दध्यौ पशुपतिश्चिरम् ॥ २३॥

शब्दार्थ

शस्त्रैः—हथियार से; अस्त्र-अन्वितैः—मंत्रों से; एवम्—इस प्रकार; अनिर्भिन्न—न कटने से; त्वचम्—चमड़ा; हरः—वीरभद्र ने; विस्मयम्—विस्मित; परम्—अत्यधिक; आपन्नः—चकित; दध्यौ—सोचा; पशुपतिः—वीरभद्र; चिरम्—दीर्घ-काल तक।

उसने मंत्रों तथा हथियारों के बल पर दक्ष का सिर काटना चाहा, किन्तु दक्ष के सिर की चमड़ी तक को काट पाना दूभर हो रहा था। इस प्रकार वीरभद्र अत्यधिक चकित हुआ।

दृष्ट्वा संज्ञपनं योगं पशूनां स पतिर्मखे ।
यजमानपशोः कस्य कायात्तेनाहरच्छिरः ॥ २४॥

शब्दार्थ

दृष्ट्वा—देखकर; संज्ञपनम्—यज्ञ में पशुओं के वध के लिए; योगम्—युक्ति; पशूनाम्—पशुओं की; सः—वह (वीरभद्र); पतिः—स्वामी; मखे—यज्ञ में; यजमान-पशोः—यजमान रूपी पशु; कस्य—दक्ष का; कायात्—शरीर से; तेन—उस (युक्ति) से; अहरत्—काट दिया; शिरः—उसका सिर।

तब वीरभद्र ने यज्ञशाला में लकड़ी की बनी युक्ति (करनी) देखी जिससे पशुओं का वध किया जाता था। उसने दक्ष का सिर काटने में इसका लाभ उठाया।

तात्पर्य : इस प्रसंग में यह ध्यान देने की बात है कि यज्ञ में पशुओं को मारने की युक्ति इसलिए नहीं बनी थी कि उनके मांसाहार में सुविधा हो। यह वध वैदिक मंत्रों के बल पर बलि दिये जाने वाले पशु को नवीन जीवन प्रदान करने के उद्देश्य से किया जाता था। मंत्रों के परीक्षण के लिए इन पशुओं की बलि दी जाती थी और यज्ञ सम्पन्न किये जाते थे। आधुनिक युग में भी शारीरिक प्रयोगशालाओं में पशु-शरीरों पर प्रयोग किये जाते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मण ठीक से मंत्रों का उच्चारण करते हैं या नहीं इसकी परीक्षा यज्ञस्थल पर यज्ञ द्वारा की जाती थी। कुल मिलाकर बलि दिये गये पशु किसी प्रकार घाटे में नहीं रहते थे। केवल कुछ बूढ़े पशुओं की बलि दी जाती थी, किन्तु बदले में उन्हें नवीन शरीर प्राप्त

हो जाते थे। यही वैदिक मंत्रों की परीक्षा थी। वीरभद्र ने करनी का प्रयोग पशुबलि के लिए नहीं किया, परन्तु तुरंत ही उसने इससे सबों के देखते-देखते दक्ष का सिर धड़ से अलग कर दिया।

साधुवादस्तदा तेषां कर्म तत्तस्य पश्यताम् ।
भूतप्रेतपिशाचानां अन्येषां तद्विपर्ययः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

साधु-वादः—वाहवाही; तदा—उस समय; तेषाम्—उनके (शिव के अनुचरों के); कर्म—क्रिया; तत्—वह; तस्य—उस (वीरभद्र) का; पश्यताम्—देखते हुए; भूत-प्रेत-पिशाचानाम्—भूतों, प्रेतों तथा पिशाचों का; अन्येषाम्—अन्यों (दक्ष के दल) का; तत्-विपर्ययः—इसके विपरीत (शोकपूर्ण शब्द, हाहाकार)।

वीरभद्र के कार्य से शिवजी के दल को प्रसन्नता हुई और वह वाह-वाह कर उठा तथा जितने भी भूत, प्रेत तथा असुर वहाँ आये थे, उन सबों ने भयानक किलकारियाँ भरी। दूसरी ओर, यज्ञ का भार सँभालने वाले ब्राह्मण दक्ष की मृत्यु के कारण शोक से चीत्कार करने लगे।

जुहावैतच्छिरस्तस्मिन्दक्षिणाग्नावमर्षितः ।
तद्देवयजनं दग्ध्वा प्रातिष्ठद्गुह्यकालयम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

जुहाव—आहुति की; एतत्—वह; शिरः—सिर; तस्मिन्—उसमें; दक्षिण-अग्नौ—दक्षिण दिशा की यज्ञ-अग्नि में; अमर्षितः—अत्यन्त क्रुद्ध वीरभद्र; तत्—दक्ष का; देव-यजनम्—देवताओं के यज्ञ की व्यवस्था; दग्ध्वा—आग लगाकर; प्रातिष्ठत्—विदा हुआ; गुह्यक-आलयम्—गुह्यकों के धाम (कैलास)।

फिर वीरभद्र ने उस सिर को लेकर अत्यन्त क्रोध से यज्ञ अग्नि की दक्षिण दिशा में आहुति के रूप में डाल दिया। इस प्रकार शिव के अनुचरों ने यज्ञ की सारी व्यवस्था तहस-नहस कर डाली और समस्त यज्ञ क्षेत्र में आग लगाकर अपने स्वामी के धाम, कैलास के लिए प्रस्थान किया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के चतुर्थ स्कंध के अन्तर्गत ''दक्ष के यज्ञ का विध्वंस,'' नामक पाँचवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।